# रोना स्त्रियोचित है ?

• कात्यायनी

'अमां यार, तुम तो बात-बात में औरतों जैसे रोने लगते हो !' अजी, तुम तो रोने लगे औरतों की तरह।' रोजमर्रा की जिंदगी में ये जुमले आमतौर पर सुनने को मिल जाते हैं। खासकर बच्चों की हमेशा ही ऐसी भर्त्सना की जाती है–'मर्द बच्चे हो, बात-बात में टसुए क्यों बहाने लगते हो ?'

यह एक आम धारणा है कि रोना स्त्रियों का गुण है, मर्द नहीं रोते। वह कवि-कलाकार हो तो दीगर बात है। कवि-कलाकरों में थोड़ा स्त्रैणता तो होती ही है।

यह पुरुष प्रधान सामाजिक ढांचे में व्याप्त संवेदनहीनता और निर्ममता की मानवद्रोही संस्कृति की ही एक अभिव्यक्ति है। शासक को रोना नहीं चाहिए। रोने से उसकी कमजोरी सामने आ जायेगी। इससे उसकी सत्ता कमजोर होगी। पुरुष रोयेगा तो औरत उससे डरना बंद कर देगी। वह रोयेगा तो औरत उसके हृदय की कोमलता, भावप्रवणता या कमजोरी को ताड़ लेगी। तब भला वह उससे डरेगी कैसे ? उसकी सत्ता स्वीकार कैसे करेगी ? वस्तुतः यह पूरी धारणा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के 'शासक-शासित फ्रेम' की बुनियाद पर खड़ी है।

लड़कों का औरतों की तरह रोना अपमानजनक है, पर लड़की कोई बहादुरी करे तो उसे 'मर्द की तरह बहादुर' कहा जाता है। खूब लड़ी मर्दानी... लड़की बहादुर है तो वह मर्दानी है। बहादुरी स्त्री के लिए गौरव है क्योंकि बहादुरी तो आमतौर पर पुरुष ही करते हैं। औरत का सहज गुण तो भीरुता है।

लेकिन रोना हमेशा ही कातरता या अवशता नहीं होता। रोना घनीभूत दुख, पीड़ा भावोद्रेक और प्यार की अभिव्यक्ति भी होता है। जो संघर्ष करता है वह भी रोता है। पर आज पुरुष और स्त्री में जिन चीजों को असामान्य या अस्वाभाविक कहकर चिन्हित किया जाता है, उनके कारण और मानदंड मुख्यतः वर्तमान नारी उत्पीड़क, पुरुष स्वामित्ववादी और असमानतापूर्ण सामाजिक ढांचे द्वारा निर्धारित होते हैं न कि प्राकृतिक स्थितियों द्वारा।

बच्चों को हम रोज-रोज रोने के बारे में अपनी इस धारणा से और ऐसी ही तमाम धारणाओं से लैस करते हैं, उनकी सहज भावनात्मक अभिव्यक्तियों की खिल्ली उड़ाते हैं और इस तरह तिल-तिल कर उन्हें संवेदनहीन बनाते जाते हैं। वर्तमान समाज के एक आदर्श भावी नागरिक के रूप में उन्हें ढालते जाते हैं। यदि वह लड़का है तो उसे स्त्री पर शासन करने वाले निरंकुश निर्मम व्यक्ति के रूप में और यदि लड़की है तो उसे पुरुष सत्ता को स्वीकारने वाली, खुद को हीन और कमजोर समझने वाली स्त्री के रूप में ढालने का काम परिवार से लेकर समाज और विद्यालयों तक एक सतत प्रक्रिया के रूप में जारी रहता है।

## बच निकलना

*चीज़ों के बारे में*
*सोचने के लिए कहा उन्होंने*
*हमें*
*चीज़ों में बदल डालने के लिए।*
*हमने सोचा*
*चीज़ों के बारे में*
*चीज़ों में बदल जाने से*
*बचने के लिए।*

प्रायः यह भी कहा जाता है कि ख्याल करना, प्यार करना और सेवा-सुश्रुषा स्त्रियों के विशेष गुण है। ऐसा हो सकता है कि प्राकृतिक वस्तुगत स्थितियों और विशिष्टताओं (जैसे गर्भधारण, संतानोत्पत्ति, स्तनपान आदि) के कारण स्त्रियों में ये गुण विशेष रूप से कुछ अधिक मात्रा में पाये जाते हों। पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि 'केयरिंग', 'केयरेसिंग' या 'नर्सिंग' पुरुषों के गुण ही नहीं या कि ये काम या भाव पुरुषोचित नहीं है। जब ऐसी बातें की जाती हैं तो उसके पीछे भी यह पूर्वाग्रह काम करता रहता है कि सेवा धर्म स्त्री का धर्म है, स्त्री पुरुष की सेवा करती है और पुरुष स्त्री की हिफाजत करता है आदि-आदि। गौर करने की बात है जब स्त्री-पुरुष के बीच प्यार की अभिव्यक्ति की बात आती है तो पुरुष को भावनात्मक रूप से सक्रिय जीव और स्त्री को मात्र (प्यार का पात्र) एक वस्तु मान लिया जाता है। पुरुष इश्क का साकार रूप होता है और स्त्री हुस्न का। हुस्न प्यार नहीं करता, वह प्यार करने की वस्तु होता है। 'तू हुस्न है, मैं इश्क हूं, तू मुझमें है मैं तुझमें हूं'। आत्मा-परमात्मा सदृश हुस्न-इश्क की इस एकरूपता में भी द्वैधता है–हर हाल में इश्क पुरुष ही होता है और हुस्न स्त्री ही।

विडंबना यह भी है कि पुरुष प्रभुत्व के सामाजिक-आत्मिक मूल्यों-मान्यताओं-धारणाओं से नारी मुक्ति की पैरोकार स्त्रियां भी ग्रस्त हैं। हावभाव, वेशभूषा तथा जीवनशैली में पुरुषों का अंधानुकरण भी स्त्री की हीन ग्रंथि की ही परिचायक है।

कुल मिलाकर, तर्क, विज्ञान, समानता और जनवाद में विश्वास रखने वाले लोगों को स्त्रियों व पुरुषों में नैसर्गिक व स्वाभाविक माने जाने वाले सभी गुणों के बारे में स्थापित धारणाओं पर पुनर्विचार करना होगा। उन्हें सोचना होगा कि रोना स्त्रियोचित क्यों है और न रोना पुरुषोचित क्यों है।

*('दुर्ग द्वार पर दस्तक' से)*

❑